14. भारतीय नारी

• स्वामी विवेकानंद

लेखक परिचय

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को मकर संक्रांति के दिन कोलकाता में हुआ। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त और माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। बाल्यकाल में उनका नाम नरेन्द्र था। वे अत्यंत मेधावी और जिज्ञासु थे। तरुणावस्था में वे दक्षिणेश्वर काली मंदिर के उपासक रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आए और वहाँ से उनके जीवन की दिशा ही बदल गई। 1887 में रामकृष्ण परमहंस के स्वर्गारोहण के बाद उन्होंने संन्यास धारण किया। वे परिव्राजक बन देश भर में भ्रमण करते रहे। इस अवधि में बहुत सूक्ष्मता से भारत का अध्ययन किया जो उनके भाषणों में व्यक्त होता था। वे धर्म को भारत का प्राण–तत्त्व मानते थे। कन्याकुमारी में श्रीपाद शिला पर तीन दिन और तीन रात तक ध्यानावस्था में उन्हें भारत का साक्षात्कार हुआ।

11 सितम्बर, 1893 में, अमेरिका के शिकागो में आयोजित विश्व–धर्म–सम्मेलन में विवेकानंद जी हिन्दू–धर्म के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए और वहाँ उनकी ओजस्वी वाणी का इतना प्रभाव हुआ कि विश्वभर में भारत के प्रति दुनिया की दृष्टि ही बदल गई। वे कई महीनों तक विदेशों में रहकर भारतीय संस्कृति और समसामयिक वैश्विक परिदृश्य पर भाषण देते रहे। भारत लौटने पर आसेतु–हिमाचल उनका भव्य अभिनंदन हुआ। परतंत्र और दुखी भारतीय जन समाज को उनमें अपना उद्‌घाटक दिखाई दिया। उनके भाषणों में आधुनिक भारत के अभ्युदय के सभी बीजमंत्र विद्‌यमान हैं। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और संन्यासियों के नव कर्तव्यों का प्रतिपादन किया। उनसे प्रेरणा लेकर अनेक साहित्यकारों ने अपने लेखन का परिष्कार किया। प्रसिद्‌ध बंगला उपन्यासकार शरत्‌चन्द्र उनके शिष्य थे। वे संस्कृत भाषा की पुनर्प्रतिष्ठा के पक्षधर थे। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक भारत के राष्ट्र–नायक थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में ''यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िए। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।''

पाठ परिचय

यह पाठ स्वामी विवेकानन्द के एक साक्षात्कार के अंश से है जो प्रबुद्ध भारत समाचार पत्र में, दिसम्बर 1898 के अंक में प्रकाशित हुआ था। पाठ हमें एकनाथ रानाडे के संकलन से प्राप्त हुआ, जो उन्होंने सन् 1963 में प्रकाशित करवाया था। पत्रकार के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने भारतीय नारी के उद्‌धार के संबंध में भारतीय दृष्टि का संकेत किया है, जो आधुनिक और प्रगतिशील होने के साथ–साथ पश्चिम के अंधानुकरण पर चल रहे नारी–आंदोलनों के प्रति चेतावनी भी है।

साक्षात्कार में में स्वामी विवेकानन्द का संदेश स्पष्ट है, ''भारत और भारतीयता में विश्वास रखो। तेजस्वी बनो। मौलिकता को क्षति पहुँचाए बिना, देशोद्‌धार के कार्य में जुट जाओ।'' उनके

विचारों में प्राचीन भारतीय आदर्शों की, आधुनिक व्याख्या चमत्कृत करने वाली है। पाठ का उत्तरार्ध, उनके न्यूयार्क के एक भाषण से उद्धृत है।

मूल पाठ

आखिर एक रविवार को बड़े सवेरे ही मैं सम्पादक महोदय का आदेश पालन करने में समर्थ हुआ। भारतीय नारियों की अवस्था और उनके भविष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का मतामत जानने के लिए मैंने उनसे हिमालय की एक सुन्दर उपत्यका में भेंट की।

मैंने जब स्वामीजी को अपने आने का उद्देश्य बतलाया तो वे बोले, ''चलो थोड़ा टहल आयें।'' हम लोग उसी समय बाहर निकल पड़े। अहा! कैसा मनोहर दृश्य था। ऐसा दृश्य संसार में शायद ही हो।

कहीं धूप और कहीं छाया से ढँके मार्गों को काटते हुए हम शान्तिपूर्ण ग्रामों में चले जा रहे थे। कहीं ग्रामीण बच्चे आनन्द से खेलकूद कर रहे थे, और कहीं चारों ओर सुनहले खेत लहलहा रहे थे। ऊँचे–ऊँचे वृक्ष ऐसे दीखते थे, मानो वे नीलगगन को पार कर उसके परे चले जाना चाहते हों। खेतों में कहीं पर कुछ कृषक–बालाएँ हाथों में हँसिया लिए शीत ऋतु के लिए बाजरे के भुट्टे काटकर इकट्ठा कर रही थीं, तो अन्य कहीं सेवों की एक सुन्दर वाटिका दिखाई देती थी, जिसमें वृक्षों के नीचे लाल फलों के ढेर बड़े ही सुहावने लगते थे। फिर कुछ क्षण बाद ही हम खुले मैदान में आ गए और हमारे सामने हिमाच्छादित शुभ्र शिखर, अग्रमाला को चीरकर, अद्भुत सौन्दर्य के साथ विराजमान् थे।

अन्त में स्वामीजी ने मौन भंग करते हुए कहा, ''आर्यों और सेमेटिक लोगों के नारी–सम्बंधी आदर्श सदैव एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत रहे हैं। सेमेटिक लोग स्त्रियों की उपस्थिति को उपासना–विधि में घोर विघ्नस्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियों को किसी प्रकार के धर्म–कर्म का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि आहार के लिए पक्षी मारना भी उनके लिए निषिद्ध है। आर्यों के अनुसार तो सहधर्मिणी के बिना पुरुष कोई धार्मिक कार्य नहीं कर सकता।

ऐसी अप्रत्याशित और स्पष्ट बात से मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। मैंने पूछा, ''किन्तु स्वामीजी, क्या हिन्दू-धर्म आर्य-धर्म का अंग विशेष नहीं है ?

स्वामीजी ने शान्त स्वर में कहा, ''आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकांशतः एक पौराणिक धर्म है, जिसका उद्गम बौद्धकाल के पश्चात हुआ है। दयानन्द सरस्वती ने यह दर्शाया कि यद्यपि गार्हपत्य अग्नि में आहुति प्रदान करने की जो वैदिक क्रिया है, उसके अनुष्ठान में सहधर्मिणी की उपस्थिति नितांत अनिवार्य है, पर तो भी वह शालग्रामशिला अथवा गृह–देवता की मूर्ति को स्पर्श नहीं कर सकती; क्योंकि इस प्रकार की पूजा का प्रचलन पौराणिक काल के उत्तरार्ध से हुआ है।''

''अतः, आपके अनुसार हमारे देश में पाया जाने वाला स्त्री–पुरुष के अधिकारों का भेद पूर्णतः बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण है ?''

हाँ! जहाँ कहीं भी यह भेद पाया जाता है, वहाँ तो मैं ऐसा ही सोचता हूँ। पाश्चात्य आलोचना की आकस्मिक बाढ़ से प्रभावित होकर और पाश्चात्य नारियों की तुलना में अपने देश की नारियों की अवस्था भिन्न देखकर हम भारत में नारी के प्रति असमानता के उनके आरोप को

चुपचाप स्वीकार न कर लें। विगत कई सदियों से भारत में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण होता रहा है, जिससे हम स्त्रियों का विशेष संरक्षण करने को बाध्य हुए हैं। इस एक तथ्य के, न कि स्त्री जाति के प्रति हीन दृष्टि के मिथ्या आरोप के प्रकाश में हम अपनी प्रथाओं के यथार्थ स्वरूप को समझ सकेंगे।

''स्वामीजी, तो क्या आप भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा से पूर्णतः संतुष्ट हैं ?''

''कदापि नहीं। पर स्त्रियों के सम्बंध में हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार बस उनको शिक्षा देने तक ही सीमित रहना चाहिए। उनमें ऐसी योग्यता ला देनी होगी जिससे वे अपनी समस्याओं को स्वयं ही अपने ढंग से सुलझा सकें। अन्य कोई उनके लिए यह कार्य नहीं कर सकता, और करने का प्रयत्न भी उचित नहीं है। हमारी भारतीय स्त्रियाँ अपनी समस्याओं को हल करने में संसार के किसी भी भाग की स्त्रियों से पीछे नहीं हैं।''

'' स्वामीजी, क्या आप बतलाएँगे कि हमारे देश में बौद्धधर्म के द्वारा यह दोष किस प्रकार पैदा हुआ जिसका अभी आपने उल्लेख किया ?''

''इस दोष का जन्म बौद्धधर्म के पतन–काल में हुआ। प्रत्येक आन्दोलन किसी असाधारण विशेषता के कारण ही संसार में सफलता प्राप्त कर सकता है, पर जब उसका पतन होता है, तब उसकी यह अभिमानास्पद विशेषता ही उसकी दुर्बलता का एक मुख्य उपादान बन जाती है। नर श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध में संगठन करने की अद्भुत शक्ति थी, और इसी शक्ति के बल पर उन्होंने संसार को अपना अनुगामी बनाया था। किंतु, उनका धर्म केवल संन्यासियों के लिए ही उपयोगी था। अतः, उसका एक कुफल यह हुआ कि संन्यासी की वेश–भूषा तक सम्मानित होने लगी। फिर उन्होंने सर्वप्रथम मठ–प्रथा अर्थात् धर्म–संघ में रहने की प्रथा का प्रवर्तन किया। इसके लिए उन्हें बाध्य होकर स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्थान देना पड़ा; क्योंकि प्रमुख भिक्षुणियाँ कुछ विशिष्ट मठ–अध्यक्षों की अनुमति के बिना किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ नहीं डाल सकती थीं। इससे उनके तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति तो अवश्य हुई, अर्थात् उनके धर्म–संघ की एकसूत्रता बनी रही, किन्तु उसके दूरगामी परिणाम अनिष्ट हुए।''

''परन्तु स्वामीजी, संन्यास धर्म तो वेदविहित है।''

''अवश्य, संन्यास वेद–प्रतिपादित है, पर वहाँ स्त्री–पुरुष का कोई भेद नहीं किया गया है। क्या तुम्हें स्मरण है कि विदेहराज जनक की राजसभा में किस प्रकार धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर महर्षि याज्ञवल्क्य से वाद–विवाद हुआ था ? इस वाद–विवाद में ब्रह्मवादिनी (गार्गी) ने प्रधान भाग लिया था। उसने कहा था, ''मेरे दो प्रश्न मानो कुशल धनुर्धारी के हाथ में दो तीक्ष्ण बाण हैं।'' वहाँ पर उसके स्त्री होने के सम्बन्ध में कोई प्रसंग तक नहीं उठाया गया है। तुम्हें विदित ही होगा कि प्राचीन गुरुकुलों में बालक और बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा ग्रहण करती थीं। इससे अधिक साम्यभाव और क्या हो सकता है ? हमारे संस्कृत नाटकों को पढ़कर देखा ? शकुन्तला का आख्यान पढ़ो, और फिर देखो, टेनिसन की 'राजकुमारी' में हमारे लिए क्या कोई नई शिक्षाप्रद बात प्राप्त हो सकती है ?''

'' स्वामीजी! आपमें हमारी अतीत–गौरव–गरिमा को इतने सुन्दर ढंग से प्रकट करने की बड़ी अद्भुत क्षमता है।''

स्वामीजी शान्तिपूर्वक बोले, ''सम्भव है, इसका कारण यह हो कि मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया, चाहे वह उसकी कल्पना ही क्यों न हो, उस जाति में स्त्री–जाति के लिए इतना अधिक सम्मान और श्रद्धा है, जिसकी तुलना संसार में हो ही नहीं सकती। पाश्चात्य स्त्रियाँ ऐसे कई कानूनी बंधनों में जकड़ी हुई हैं, जिनसे भारतीय स्त्रियाँ सर्वथा मुक्त एवं अपरिचित हैं। भारतीय समाज में निश्चय ही दोष और अपवाद दोनों हैं, पर यही स्थिति पाश्चात्य समाजों की भी है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि संसार के सभी भागों में प्रीति, कोमलता और साधुता को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न चल रहे हैं, और विभिन्न जातीय प्रथाएँ इन्हीं को यथासम्भव प्रकट करने की प्रणाली मात्र हैं। जहाँ तक गृहस्थ धर्म का संबंध है, मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि भारतीय प्रणाली में अन्य देशों की अपेक्षा अनेक सद्‌गुण विद्‌यमान हैं।''

'' स्वामीजी, तो क्या भारतीय स्त्री–जीवन के सम्बंध में हम इतने संतुष्ट हैं कि हमारे समक्ष उसकी कोई भी समस्याएँ नहीं हैं ?''

''क्यों नहीं, बहुत–सी समस्याएँ हैं – और ये समस्याएँ बड़ी गम्भीर हैं; परन्तु इनमें से कोई ऐसी नहीं है, जो 'शिक्षा' के द्‌वारा हल न हो सके। पर हाँ, शिक्षा की सच्ची कल्पना हममें से कदाचित् ही किसी को हो।''

''स्वामीजी, शिक्षा की आप क्या परिभाषा देते हैं ?''

स्वामीजी ने स्मित–हास्य से कहा, ''मैं परिभाषाएँ देने के विरुद्‌ध हूँ। पर इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि सच्ची शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो। वह केवल शब्दों का रटना मात्र नहीं है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ है – व्यक्ति में योग्य कर्म की आकांक्षा एवं उसको कुशलतापूर्वक करने की पात्रता उत्पन्न करना। हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य को भली–भाँति निभा सकें और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई तथा मीराबाई आदि भारत की महान् देवियों द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सकें एवं वीर प्रसूता बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्र और त्यागमूर्ति हैं; क्योंकि उनके पास वह बल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा के चरणों में सर्वस्वार्पण करने से प्राप्त होता है।''

'' स्वामीजी, इससे प्रतीत होता है कि आपके विचारानुसार शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का भी समावेश होना चाहिए।''

स्वामीजी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, ''मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि धर्म शिक्षा का मेरुदण्ड ही है। हाँ, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ धर्म से मेरा मतलब मेरा, तुम्हारा या अन्य किसी का उपासना–मत नहीं है। मेरे मत से, अन्य विषयों के समान इस संबंध में भी शिक्षक को छात्र के भाव और धारणा के अनुसार शिक्षा देना प्रारम्भ करना चाहिए तथा उसे उन्नत करने के लिए ऐसा सहज पथ दिखा देना चाहिए, उसे सबसे कम बाधाओं का सामना करना पड़े।''

''क्या ब्रह्मचर्य–पालन को अत्यधिक धार्मिक महत्त्व देने का अर्थ मातृत्व और पत्नीत्व को समाज में उनके सर्वोच्च स्थान से वंचित कर, वहाँ उस स्त्रीवर्ग को प्रतिष्ठित करना नहीं है, जो पवित्र दायित्वों से परे रहती हैं ?

''तुम्हें स्मरण रहना चाहिए कि हमारे धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ब्रह्मचर्य की महिमा समान रूप से बतायी गई है। तुम्हारे प्रश्न से यह भी ज्ञात होता है कि तुम्हारे मन में कुछ भ्रम फैला हुआ है। हिन्दू धर्म में मानवात्मा का केवल एक ही कर्तव्य बतलाया गया है और वह है इस अनित्य और नश्वर जगत् में नित्य एवं शाश्वत पद की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति के लिए कोई एक ही बँधा हुआ मार्ग नहीं है। विवाह हो या ब्रह्मचर्य, पाप हो या पुण्य, ज्ञान हो या अज्ञान–इनमें से प्रत्येक की सार्थकता हो सकती है, यदि वह इस चरम लक्ष्य की ओर ले जाने में सहायता करे। बस यहीं पर हिन्दू धर्म और बौद्धधर्म में महान् अन्तर है; क्योंकि बौद्ध धर्म में जीवन का प्रधान लक्ष्य और वह भी मोटे तौर पर केवल एक ही मार्ग से बाह्य जगत् की क्षणिकता का अनुभव कर लेना मात्र है। क्या तुम्हें महाभारत में वर्णित उस युवक योगी का वृत्तांत विदित है, जिसने अपने क्रोध से उत्पन्न अपनी प्रबल मानसिक शक्ति के प्रभाव से एक कौए और बगुले को भस्म कर यौगिक शक्तियों के प्रदर्शन में धन्यता मानी थी ? क्या तुम्हें स्मरण है कि एक दिन यही योगी किसी नगर में पहुँचकर देखता है कि एक स्त्री अपने रोगी पति की सेवा–सुश्रुषा में निरत है, तथा एक धर्म नामक कसाई माँ को बेच रहा है, परन्तु इन दोनों ने अपने कर्तव्य का पूरा–पूरा पालन करके पूर्ण ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया था ?''

''तो स्वामीजी, आपका इस देश की स्त्रियों के लिए क्या सन्देश है ?''

''वही, जो पुरुषों के लिए है। भारत और भारतीय धर्म के प्रति विश्वास और श्रद्धा रखो। तेजस्विनी बनो, हृदय में उत्साह भरो, भारत में जन्म लेने के कारण लज्जित न हो, वरन् उसमें गौरव का अनुभव करो और स्मरण रखो कि यद्यपि हमें दूसरे देशों से कुछ लेना अवश्य है, पर हमारे पास दुनिया को देने के लिए दूसरे की अपेक्षा सहस्रगुना अधिक है।''

भारतीय और पाश्चात्य नारी

न्यूयार्क में भाषण देते हुए एक समय स्वामी विवेकानंदजी ने कहा था – ''मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि भारतीय स्त्रियों की ऐसी ही बौद्धिक प्रगति हो, जैसी इस देश में हुई है; परन्तु वह उन्नति तभी अभीष्ट है, जब वह उनके पवित्र जीवन और सतीत्व को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए हो। मैं अमेरिका की स्त्रियों के ज्ञान और विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा करता हूँ, परन्तु मुझे यह अनुचित दिखता है कि आप बुराइयों को भलाइयों का रंग देकर छिपाने का प्रयत्न करें। बौद्धिक विकास से ही मानव का परम कल्याण सिद्ध नहीं हो सकता। भारत में नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है, और हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। यद्यपि भारतीय स्त्रियाँ उतनी शिक्षा सम्पन्न नहीं हैं, तथापि उनका आचार–विचार अधिक पवित्र होता है। प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों को पुत्रवत् समझे।

प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को मातृवत् समझे। जब मैं इस आचरण को, जिसे आप नारी–सम्मान का भाव कहते हो, अपने चारों ओर देखता हूँ तब मेरा हृदय क्षोभ से भर जाता है। जब तक आप स्त्री–पुरुष के भेद को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति

में मानवता का दर्शन नहीं करते, तब तक इस देश की स्त्रियों की यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती। इस दशा को प्राप्त किये बिना तो आपकी स्त्रियाँ खिलौने से अधिक और कुछ भी नहीं हैं, और इसी कारण यहाँ इतने विवाह–विच्छेद होते हैं। यहाँ के पुरुष स्त्रियों के सम्मुख झुकते और उन्हें आसन प्रदान करते हैं; परन्तु एक क्षण के उपरांत वे उनकी चापलूसी करने लगते हैं; वे उनके नख–शिख सौंदर्य की प्रशंसा करना आरंभ कर देते हैं। आपको ऐसा करने का क्या अधिकार है ? कोई पुरुष इतनी दूर तक जाने का साहस ही कैसे कर पाता है ? और यहाँ की स्त्रियाँ उसको सहन भी कैसे कर लेती हैं ? इस प्रकार के आचरण से मनुष्य में निम्नतर भावों का उद्रेक होता है, उससे उच्च आदर्श की प्राप्ति सम्भव नहीं।

हमें स्त्री–पुरुष के भेद का विचार मन में नहीं रखना चाहिए, केवल यही चिन्तन करना चाहिए कि हम सभी मानव हैं और परस्पर एक–दूसरे के प्रति सद्व्यवहार और सहायता करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। हम यहाँ देखते हैं कि 'यों ही किसी नवयुवक और नवयुवती को अकेले होने का अवसर मिला, त्यों ही वह नवयुवक उस नवयुवती के रूप–लावण्य की प्रशंसा आरंभ कर देता है, और किसी स्त्री को विधिवत् पत्नी रूप में अंगीकार करने से पूर्व ही वह दो सौ स्त्रियों से प्रेमाचार कर चुका होता है। मैं यदि इन विवाहेच्छुकों में से एक होता, तो बिना किसी आडंबर के ही किसी का प्रिय पात्र बन जाता।

जब मैं भारतवर्ष में था और इन चीजों को केवल दूर से देखता–सुनता था, तब मुझे बताया गया कि उनमें कोई दोष नहीं है, यह केवल मनोविनोद है। उस समय मैंने उस पर विश्वास कर लिया था। तब से अब तक मुझे बहुत यात्रा करने का अवसर आया है, और मेरा दृढ़–विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है, यह अत्यंत दोषपूर्ण है। केवल आप पाश्चात्यवासी ही अपनी आँख बन्दकर इसे निर्दोष कहते हैं। पाश्चात्य राष्ट्रों का अभी यौवन है, साथ–ही–साथ वे अनभिज्ञ, चंचल और धनवान् हैं। जब इन गुणों में से किसी एक के प्रभाव में ही मनुष्य कितना क्या अनर्थ कर डालता है तब यहाँ ये तीनों चारों एकत्र हों वहाँ कितना भीषण अनर्थ हो सकता है? वहाँ को तो फिर कहना ही क्या। अतः सावधान!

•••

शब्दार्थ

उपत्यका–पर्वत के पास की भूमि, तराई/ हिमाच्छादित–बर्फ से ढका हुआ/ सेमेटिक–मनुष्यों का वह आधुनिक वर्ग जिसमें यहूदी, अरब, मिस्री आदि जातियाँ हैं/ अप्रत्याशित–अकस्मात होने वाला/ उपादान–वह कारण जो स्वयं कार्य रूप में परिणित हो जाय/ अनुगामी–अनुसरण करने वाला/ अनिष्ट–अमंगल, हानि/ नश्वर–नष्ट हो जाने वाला/ सतीत्व–पातिव्रत्य/ नीतिमत्ता–नीति पारायणता/ मातृवत्–माँ के समान/ अनभिज्ञ–अपरिचित।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वेदविहित से तात्पर्य है –

(क) वेद विरुद्ध (ख) वेद के अनुसार

(ग) वेद द्वारा निर्धारित (घ) वेद निरपेक्ष ( )

2. 'संघमित्रा' कौन थी ?

(क) वेदकालीन एक विदुषी (ख) सम्राट अशोक की पुत्री

(ग) गौतम–बुद्ध की पुत्री (घ) कनिष्क की पत्नी ( )

उत्तरमाला– (1) ग (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. याज्ञवल्क्य से वाद–विवाद करने वाली नारी कौन थी ?
2. बौद्ध धर्म का प्रधान लक्ष्य क्या बताया गया है ?
3. परस्त्री के स्थूल सौंदर्य की प्रशंसा करने में कैसे भावों का उद्रेक होता है ?
4. 'शकुन्तला' आख्यान पर किस संस्कृत कवि ने नाटक लिखा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आर्यों और सेमेटिक लोगों के नारी संबंधी आदर्शों में क्या अंतर रहा है ?
2. स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा की क्या परिभाषा दी ?
3. किन गुणों के समुच्चय से मनुष्य अनर्थ कर डालता है ?
4. स्वामीजी का स्त्रियों के लिए क्या संदेश है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रह्मचर्य की महिमा पर एक आलेख लिखिए।
2. स्वामी विवेकानंद के अनुसार भारतीय नारी में कौन–कौन से सद्‌गुण विद्‌यमान हैं ?
3. ''प्रत्येक पुरुष अन्य स्त्री को मातृवत् समझे।'' इस कथन के पीछे का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
4. पाश्चात्य नारी की स्वतंत्रता से उत्पन्न अच्छी और बुरी बातों को समझाइए।

•••

यह भी जानें

विसर्ग (2)

(क) निःस्वार्थ मान्य है। (निस्स्वार्थ उचित नहीं होगा)।

(ख) निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों में विसर्ग वाला रूप (निःतेज, निःवचन, निःचल) न लिखा जाए।

(ग) अंतःकरण, अंतःपुर, दुःस्वप्न, निःसंतान, प्रातःकाल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

(घ) तद्‌भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छः लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

(ङ) प्रायद्‌वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

(च) विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम :) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे – अतः, यों है :–

•••